iFke v/;k;

नाट्यशास्त्र के तत्त्व

आचार्य भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' भारतीय कला जगत में अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में जाना जाता है। नाट्याभिनय एवं समस्त कलाओं का जिस प्रकार इस ग्रन्थ में विवरण है, उतना सम्पूर्ण विश्व के किसी भी अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलता है। इस ग्रन्थ में न केवल नाट्यकला पर विचार किया गया है, बल्कि उसके साथ–साथ अन्य विषयों जैसे काव्य, संगीत, नृत्य, शिल्प तथा अन्य ललित कलाओं पर भी बृहद रूप में विचार–विमर्श किया गया है, जिसमें काव्य, नाट्य, संगीत तथा नृत्य जैसी कलाओं के द्वारा समस्त जगत में विद्यमान मानवजाति के शाश्वत जीवन की कल्पना की गयी है। आचार्य भरतमुनि ने भारत की समस्त कला को अपने अभ्यास के द्वारा निर्माण किया था, जिसका कीर्तिस्तम्भ नाट्यशास्त्र है। भरत ने नाट्यशास्त्र को वेद की संज्ञा दी है क्योंकि अन्य वेद केवल द्विज भाव के लिए हैं, परन्तु नाट्य का उपयोग इस संसार में रहने वाले प्रत्येक वर्ग के लिए है, प्रत्येक व्यक्ति इस आनन्द का अधिकारी माना गया है इसी कारण अन्य शास्त्रकारों ने भी नाट्यवेद तथा भरतमुनि को आदर के साथ स्वीकार किया है। ललित कलाओं के विश्वकोष इस ग्रन्थ ने भारत की उदात्त कला चेतना को अनुप्रमाणित किया है। नाट्यशास्त्र के सम्बन्ध में म.म. रामकृष्ण कवि ने इस बात को स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि वृद्ध भरत बारह हजार श्लोक की रचना की थी, जिसको संक्षेप में करते हुए आचार्य

भरतमुनि ने छः हजार श्लोकों में नाट्यशास्त्र का संकलन किया। वर्तमान में उपलब्ध नाट्यशास्त्र में छत्तीस अध्याय तथा छः हजार श्लोक प्राप्त है।

ukV;'kkL= ds v/;k;ksa dk oxhZdj.k ,oa ifjp; %&

ukV;'kkL= esa uR; ds rŸo %&

इतिहास गवाह है कि जब–जब मनुष्य ने खुद को असहाय पाया है तब–तब प्रकृति ने अपने ज्ञान भण्डार से उसे उबारा है, जिस प्रकार पक्षियों को चहकना कोई नहीं सिखाता, पशुओं को शिकार करना कोई नहीं सिखाता उसी प्रकार आदिमानव को भी कला का ज्ञान किसी के सिखाने से नहीं अपितु प्रकृति द्वारा स्वतः प्राप्त हुआ था। यह बात अलग है कि उसका स्वरूप समय, काल एवं परिस्थिति के अनुसार बदलता गया। नृत्य कला मानव जाति के समान ही प्राचीन है। जब मानव को भाषा का ज्ञान नहीं हुआ था उस समय वह अपने मनोभाव को शारीरिक अंगों को हिलाकर प्रदर्शित करता था। अपनी खुशी व्यक्त करने के लिए कूदना, हाथ–पैर हिलाना, गुनगुनाना आदि आरम्भ किया तभी से नृत्य कला का सूत्रपात हुआ।

ऐसा माना जाता है कि भारतीय परम्परा के अनुसार भगवान शिव के द्वारा नृत्य की उत्पत्ति हुई। शिव की नृत्य मुद्राओं को नंदी द्वारा संकलित किया गया और कालान्तर में भरत मुनि को प्राप्त हुआ और भरत ने इसे पृथ्वी पर प्रसारित किया। भारतीय इतिहास की सांगीतिक पृष्ठभूमि को देखा जाए तो यह प्राचीन वैदिक काल से पूर्व मानव जाति में प्रवेश कर

चुकी थी। भारतीय नृत्यों का जन्म वैदिक काल से भी पूर्व आरम्भ हुआ था, ऐसा विभिन्न इतिहासकारों ने उल्लेख किया है।

वैदिक काल के पश्चात् रामायण तथा महाभारत काल में भी नृत्य कला उन्नत स्वरूप में थी। राधा–कृष्ण के काल में नृत्य एवं रासलीला प्रचलित हुआ करती थी। भरत कृत ''नाट्यशास्त्र'' में भी नृत्य का शास्त्रीय वर्णन प्राप्त होता है। नृत्य के अंग, उपांग में दी गई मुद्राओं को अगर ध्यान से देखा जाय तो कुछ तो समकालीन मूर्तिकला में भी देखने को मिलते हैं। गुप्तकाल के पश्चात् उड़ीसा, खजुराहो एवं दक्षिण भारत के शिव मन्दिर चिदम्बरम की मूर्तिकला में नाट्यशास्त्र में दी गई मुद्राओं का समीकरण मिलता है। वह नृत्य विषय के लिए विकसित समय ही था जब उसका उल्लेख नाटकों में भी मिलने लगा, भारतीय इतिहास के सर्वोच्च महाकवि कालिदास कृत अनेक नाटकों में नृत्य का अत्यन्त सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है, जिनके माध्यम से भी पात्र अपने आप में जीवंत महसूस करते हैं फिर वह चाहे मालविकाग्निमित्रम् हो या विक्रमोर्वशीयम्।

महर्षि भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' में नृत्य से सम्बन्धित प्रायः सभी तत्वों को विस्तारपूर्वक समझाया गया है, अपितु इसमें हमें नाट्य प्रयोग होने वाले नृत्त का ही उल्लेख मिलता है। यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि भरत काल तक नृत्त की प्रसिद्धि, निश्चित ही अत्यन्त लोकप्रिय हो गई थी, इसी कारण नृत्त को इतने विस्तार से शास्त्रीय स्वरूप प्राप्त हो सका। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नृत्त कला से सम्बन्धित सभी पहलुओं को विस्तार पूर्वक विवरण सहित प्रस्तुत किया है, जिससे भविष्य में आने वाली कला

प्रेमी, नृत्य प्रेमी आदि कलाकारों को इसे समझने में, स्वयं आत्मसात् करने में एवं नई पीढ़ियों को हस्तान्तरित करने में कोई कठिनाई न हो।

मानव शरीर के सभी अंगों के प्रयोग से नृत्य संभव हो पाता है। शरीर द्वारा अलग–अलग भाव–भंगिमाओं को प्रदर्शित करना एवं उसे लयबद्ध रखना ही नृत्य है। शास्त्रीय नृत्य में प्रयोग होने वाले 108 करण एवं रेचक का भी उल्लेख भरत मुनि ने विस्तार पूर्वक किया है। अंगहारों के एवं पिण्डीबन्ध का भी वर्णन मिलता है। नृत्य में शारीरिक गतिविधियां हो या हाथ–पैर के सम्मिलित प्रयोग इसे ही करण कहा जाता है।

नाट्यशास्त्र में दो प्रकार बताए गए हैं, एक शिव द्वारा किया गया ताण्डव नृत्य एवं पार्वती द्वारा किया गया कोमल नृत्य जिसे लास्य कहते हैं। ताण्डव का अर्थ केवल क्रोध से नहीं अपितु पुरुषों द्वारा किया जाने वाला नृत्य ताण्डव जिसमें शारीरिक अंगों द्वारा नृत्य प्रस्तुति होती है, इस नृत्य में तेज एवं कठोर अंग संचालनों का प्रयोग किया जाता है, और लास्य नृत्य महिलाओं द्वारा किया जाने वाला रेचक अंगहारों द्वारा प्रयुक्त आकर्षक नृत्य होता है, जो प्राचीन काल से आधुनिक काल तक किसी न किसी परिस्थिति में अपने परम्परागत स्वरूपों का ध्यान रखते हुए येन केन प्रकारेण अक्षय रूप से चला आ रहा है।

iFkek·/;k;% &

नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में सर्वप्रथम भरतमुनि ने मंगलाचरण के द्वारा भगवान शंकर का स्मरण कर सम्पूर्ण देवी–देवताओं के आग्रह पर परमपिता ब्रह्मा जी द्वारा पंचम वेद के रूप में ''नाट्य'' की रचना का

उल्लेख किया है, जिसमें नाट्वेद का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इस अध्याय में नाट्यवेद के निर्माण के साथ–साथ विश्वकर्मा द्वारा प्रथम नाट्यशाला का निर्माण, भरतमुनि द्वारा इन्द्र ध्वज महोत्सव पर उनके अभिनय, नाट्य के रक्षणार्थ ब्रह्मा जी द्वारा विभिन्न स्थलों पर देवताओं की नियुक्ति, देवताओं और दानवों द्वारा नाट्यवेद की प्रशंसा, समस्त विघ्नबाधाओं का इन्द्र द्वारा निवारण एवं ब्रह्मा जी द्वारा नाट्य के विविध लक्षण का गहनतम वर्णन आदि इस अध्याय में वर्णित है।

f}rh;k·/;k;% &

नाट्य प्रयोग अथवा नाट्य प्रदर्शन हेतु नाट्य मण्डप की आवश्यकता होती है। अतः इस का निवारण हेतु मुनि द्वारा प्रार्थना करने पर इस अध्याय में नाट्यमण्डप का वर्णन शुभ नक्षत्र, नाट्य की भूमि योजना, आधार शिला, स्थापना हेतु, उत्सव विधान, भित्तिविधान, भत्तवारणी, रंगपीठ–निर्माण, रंगमंच की सजावट एवं उनके शिल्प, आकार तथा विविध साधनों का अत्यन्त गहन रूप से वर्णन किया गया है।

r`rh;k·/;k;% &

तृतीय अध्याय का सम्बन्ध नाटक संग्रह में देवताओं की स्थापना तथा उनकी प्रतिष्ठा से है। इस अध्याय के आरंभ में ही आचार्य रंगमंच के प्रतिष्ठा का विधान बताते हैं। इसके बाद जर्जर पूजन विधान, देवगण की स्थापना, अर्थमण्डल निर्माण विधि, देवगण का पूजन, देवताओं के प्रति प्रदान करने के मंत्र, घट भेदन, रंग प्रदीपन, रंग प्रतिष्ठा से शुभ प्राप्ति तथा रंग पूजन का महत्व इत्यादि का वर्णन है। अभिनवगुप्त के अनुसार जब

नाट्यगृह के निर्माण का कार्य विधि–विधान से पूरा हो जाये तो जितने भी देवताओं को मण्डप में स्थापित किया गया है उनकी विधि–विधान से पूजा का विधान, नाट्यमण्डप का निर्माण कार्य पूर्ण हो जाने पर मण्डप में उपस्थित ब्राह्मणों द्वारा जप का विधान, गायों को एक सप्ताह तक मण्डप में रखने का विधान आदि का उल्लेख किया गया है।

prFkk·/;k;% &

चतुर्थ अध्याय में नाटक का शीघ्रातिशीघ्र आरम्भ करने के उद्देश्य से भरतमुनि द्वारा परमपिता ब्रह्मा जी से प्रार्थना, ब्रह्माजी द्वारा समुद्र मंथन नामक नाटक करने का आदेश, समस्त देवी–देवताओं के सम्मुख भरत द्वारा समुद्र मंथन का नाट्य प्रयोग तथा महेश्वर के सम्मुख त्रिपुरदाह के नाट्य प्रयोग के आदेश से तण्डु द्वारा भरत को अंगहार एवं करणों का ज्ञान प्रदान करना, पूर्वरंग के दो प्रकारों का वर्णन, अंगहारों का वर्णन एवं उनकी विविध योजना का उपाय आदि का वर्णन किया गया है।

क्रमशः इस अध्याय में ताण्डवनृत्य की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन, 108 करणों का वर्णन, अध्याय के अन्त में छंदक गीत विधि तथा लक्षण, सुकुमार नृत्य स्वरूप एवं विधि तथा अवनद्ध वाद्यों की वादन विधि इत्यादि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

ipek·/;k;% &

नाट्यशास्त्र के पंचम अध्याय में नाट्य प्रयोग के आरम्भ में प्रस्तुत होने वाले सम्पूर्ण पूर्वरंग विधान का विस्तृत वर्णन किया गया है। जैसे–क्रमशः पूर्वरंग लक्षण, पूर्वरंग के विभाग, प्रत्याहार का वर्णन, अवतरण

आरम्भ, आश्रावण, वक्रपाणि, परिघट्टना, संघट्टना, मार्गासारित, आसारित, गीत विधि, उत्थापना, परिवर्तन, नांदी, रंग द्वार, चारी–महाचारी, त्रिगत, बहिर गीत, देव तथा राक्षसों की शोभा, निर्गीत, शुद्ध पूर्वरंग में गीत विधान, प्रथम परिवर्तन से लेकर चतुर्थ परिवर्तन का विस्तार स्वरूप में वर्णन के साथ–साथ नान्दी प्रस्तावना तथा ध्रुवाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन प्राप्त है।

"k"Bk·/;k;% &

नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत षष्ठम् अध्याय आरम्भ से लेकर अन्त तक विभिन्न रसों पर आधारित है। इस अध्याय में ऋषिगण रस से सम्बन्धित पाँच प्रश्न करते हैं जिनके उत्तर स्वरूप भरतमुनि द्वारा विविध रसों के नामकरण का आधार संग्रह, कारिका, निरूक्ति का आधार लेकर नाट्य–संग्रह के विवरण के साथ–साथ रसों का विस्तृत वर्णन किया गया है। विभिन्न रस के वर्णन के साथ–साथ रस निष्पत्ति, रसों का भाव से पारस्परिक सम्बन्ध, रस के अधिष्ठाता एवं उनके स्थायी भावों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

lIrek·/;k;% &

नाट्यशास्त्र का सप्तम् अध्याय भावाध्याय के नाम से जाना जाता है जिसमें भाव, विभाव, स्थायी भाव तथा व्यभिचारी भावों का विस्तृत रूप में विवेचन किया गया है। भाव के साथ–साथ इस अध्याय में आठ प्रकार के सात्विक भावों का विवरण भी है जिसका स्थान सर्वोच्च माना गया है।

v"Vek·/;k;% &

भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र के प्रायः सभी अध्याय अपने आप में महत्वपूर्ण हैं परन्तु कुछ अध्याय अति महत्वपूर्ण माने जाते हैं जिसमें अष्टम अध्याय समाविष्ट है। यह अध्याय उपांग–विधान के नाम से परिचित रहा है और इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इस में केवल चार पंक्तियाँ ही गद्यमय हैं शेष अन्य पंक्तियाँ पद्यमय हैं।

uoek·/;k;% &

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् कहा जा सकता है कि आंगिक अभिनय की चर्चा यद्यपि आठवें अध्याय में ही आरंभ हो गयी थी किन्तु इसके विस्तृत क्षेत्र के कारण नवम् अध्याय में भी आंगिक अभिनय का विस्तृत विवरण देखने को मिलता है। इस अध्याय में आंगिक अभिनय के विस्तार को निरन्तरता देते हुए हस्त, कुक्षी, कटि तथा पाद आदि शरीर के अंगों का अभिनय, चौबीस प्रकार की असंयुक्त हस्त मुद्राएँ, तेरह प्रकार की संयुक्त हस्तमुद्राएँ, तीस प्रकार के नृत्त हस्तों का वर्णन तथा चौंसठ प्रकार के हस्त प्रकारों का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया गया है। एक नाट्यकर्ता, नर्तक अथवा नृत्यांगना के प्रदर्शन में अंग संचालन एवं हस्त मुद्राओं का प्रयोग, विविध रस, भाव तथा अनुभाव के अनुरूप होता है, इसलिए इस अध्याय में मुद्राओं की उपयोगिता के सम्बन्ध में विस्तृत रूप में विवेचन किया गया है।

n'kek·/;k;% &

दशम् अध्याय में विभिन्न प्रकार के उपांग का वर्णन किया गया है, जिसमें वक्ष के पाँच भेद (आभुग्न, निर्भुग्न, प्रकम्पित, उद्वाहित तथा सम), पार्श्व के पाँच भेद (नत, सम्मुनत, प्रसारित, विवर्तित तथा अपश्रित), उदर के तीन प्रकार (क्षाम, खल्व एवं पूर्ण) कटि के पाँच प्रकार (छिन्ना, निवृत्ता, रेचिता, कम्पिता, उद्वाहिता), उरू के पाँच भेद (कम्पन, चलन, स्तम्भन, उद्वर्तन तथा विवर्तन), जंघा के पांच प्रकार (आवर्तित, नत, क्षिप्त, उद्वाहित, परिवृत्त), पादकर्म के भी पाँच प्रकार (उद्घटित, सम, अग्रतल, अंचित एवं कुंचित) का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

,dkn'kk·/;k;% &

नाट्यशास्त्र के एकादश अध्याय में नाट्याभिनय एवं नृत्य में प्रयोग होने वाली महत्वपूर्ण चारी एवं उनके भेद का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। चारी के दो भेद एवं सोलह प्रकार की भूमिचारी और आकाशचारियों के लक्षण तथा उनके विभिन्न प्रयोग के वर्णन के साथ–साथ करण, मण्डलों की नाट्य उपयोगिता, वैष्णवादि छः स्थान, उनके क्रम में प्रयोग होने वाले विनियोग, न्याय शब्द की निरूक्ति, नाट्यशास्त्र की प्रयोग विधि, सौष्ठव, चतुरस्त्रादि अंग के लक्षण आदि का अत्यन्त विस्तृत रूप में उल्लेख किया गया है।

}kn'kk·/;k;% &

इस अध्याय में चारियों के समूह (मेल) से उद्भूत दश प्रकार के आकाशिक मण्डल एवं दश प्रकार के भौमिक मण्डल के वर्णन के

साथ–साथ उनके लक्षण और उनके भिन्न–भिन्न प्रयोग का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

=;kn'kk·/;k;% &

इस अध्याय में आचार्य भरत मुनि ने अभिनय के समय किये जाने वाले विभिन्न पात्रों की गतियाँ एवं उनके विभिन्न भेद, अभिनय, अभिनय के समय रंगमंच पर उत्तम एवं मध्यम पात्रों जैसे–देव, दानव, नाग, राक्षस, यक्ष तथा राजा आदि पात्रों की शारीरिक भावभंगिमाएँ, पाद चलन का ताल, कला और लय विधान, भिन्न–भिन्न प्रकार के रस की गति, नाट्य प्रयोग के प्रारम्भ में प्रस्तुत होने वाली ध्रुवाओं के गान आदि का प्रचुर मात्रा में विवरण उल्लेख दिया गया है।

prn'kk·/;k;% &

नाट्शास्त्र के इस अध्याय में वाद्यों की स्थापना, कक्ष्या परिधि एवं उनकी उपयोगिता, रंगमंच पर नाट्याभिनय के समय सम्बन्धित प्रवेश सूचनाएं, रंगमंच की दिशा व्यवस्था, विभिन्न प्रवृत्तियों एवं उनकी भिन्न–भिन्न प्रकार की विधाएँ, लोकनाट्यधर्मी एवं उनके विविध लक्षण तथा रंगमंच पर विद्यमान जल, स्थल, वन, उपवन, गृह आदि का सांकेतिक वर्णन किया गया है। इसमें सुकुमार तथा आविध्य नामक दो प्रकार के नाट्य प्रयोगों का वर्णन भी विस्तारपूर्वक किया गया है।

ipn'kk·/;k;% &

इस अध्याय में सर्वप्रथम नाट्याभिनय में परस्पर संवादों का महत्व, वाचिक अभिनय जैसे–नाम, आघात, निपात, उपसर्ग, तद्वित, समास, सन्धि

एवं विभक्ति आदि का वर्णन, पाठ्य के दो प्रकार के भेद एवं विभिन्न आधार, पाठ्यवर्ण का निरूपण, समास, छन्दों की विभेदक पद्धति का वर्णन करते हुए नाट्याभिनय में प्रयोग की जाने वाली विभिन्न भाषाओं के शब्द–भेद का विवेचन किया गया है। अन्त में नाटक में प्रयोग होने वाले सवांदमय अभिनय में प्रयुक्त किये जाने वाले स्वर तथा वर्ण का भी अत्यन्त विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

"kkM"kk·/;k;% &

पूर्ववत् अध्याय में छन्द विधान का वर्णन किया गया था। उसी को निरन्तरता देते हुए इस अध्याय में छन्द विधान आदि का नाट्य प्रयोग में इनका व्यवहार तथा लक्षण का वर्णन किया गया है जिसको वृत्त विधान कहा जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार के वृत्त विधान, उनके लक्षण तथा उनका विस्तारपूर्वक उदाहरण एवं अन्त में सम तथा विषम वृत्त का वर्णन और छन्दों का प्रसाद विधि एवं उनके विकासक्रम पर प्रकाश डाला गया है।

lIrn'kk·/;k;% –

नाट्यशास्त्र के सत्रहवें अध्याय में नाट्याभिनय के अन्तर्गत प्रयोग होने वाले काव्य के छत्तीस लक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। भिन्न–भिन्न टीकाकारों के अपने–अपने मतों के अनुसार काव्य लक्षणों के विषय में मतभेद प्राप्त होते हैं, कुछ टीकाकारों के लक्षणों की नाटयाभिनय में महत्वपूर्ण भूमिका को मानते हुए उसका व्यापक रूप में वर्णन किया गया है। इस अध्याय में विविध मतभेदों को नज़रअन्दाज़ करते हुए भरत मुनि ने

भूषण, अक्षर–संघातादि छत्तीस काव्य लक्षणों का वर्णन किया है, तत्पश्चात् विभिन्न प्रकार के अलंकार, उपमा एवं यमक के भेदों के वर्णन के साथ–साथ विविध प्रकार के गूढार्थ और अर्थहीन दोषों के निरूपण आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

v"Vkn'kk·/;k;% &

इस अध्याय में नाट्याभिनय के लिए विशेष रूप से उपयुक्त भाषाओं का वर्णन करते हुए प्राकृत पाठ्य के तीन प्रकार, नाट्य उपयोगी स्वर, असंयुक्त व्यंजन, संयुक्त व्यंजन, चार प्रकार की भाषाओं के विस्तृत वर्णन में नायकादि के संस्कृत पाठ्य का विधान भी वर्णित है। नाट्य में मागधी, अर्धमागधी, शौरसैनी और दक्षिणात्य के प्रयोग का वर्णन कर शकार और शबरों की भाषा विधान के नियंत्रण का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

, dkufo'kk·/;k;% &

इस अध्याय में नाट्य रचना में प्रयुक्त होने वाले लौकिक वाक्यों में उत्तम, मध्यम तथा अधम पात्रों को सम्बोधन स्वरूप किये जाने वाले उपयुक्त शब्द तथा उनके प्रयोग का वर्णन करते हुए नाट्याभिनय के पात्रों के नामकरण एवं उनकी विधि, पाठ्य के गुण एवं उसका स्वरूप, विभिन्न रसों के अनुकूल सप्त स्वरों के तीन स्थान एवं उनके भिन्न–भिन्न रसों का वर्णन, चार वर्ण एवं उनका अभिनय, व्यवहारिक पक्ष, काकु के दो भेद, उच्च, दीप्तादि छः अलंकारों का स्वरूप, उच्चारण के छः अंग, स्वरों का विराम एवं उनके लक्षण, अलंकारों तथा विरामों में हस्त संचालन की विधि आदि का विस्तृत वर्णन इस अध्याय में प्राप्त होता है।

fo'kk·/;k;% &

इस अध्याय में रूपकों के विभेद का वर्णन करते हुए नाट्यशास्त्र के मुख्य विषय का आरम्भ किया गया है। इसमें दस रूपकों के लक्षणों को भी बताया गया है। इसके अंगभूत अंक, प्रवेशक, विष्कम्भक, चूलिका इत्यादि का निरूपण करते हुए रूपकों के अन्य संघटक अंगों की चर्चा की गई है। अध्याय में क्रम से नाटक, प्रकरण आदि का सांगोपांग निरूपण हुआ है, तत्पश्चात् नाट्य के प्रकार, नाटिका, समवकार तथा विद्रव, कपट और श्रृंगार के तीन–तीन भेदों का विवेचन है। अन्त में लास्य का लक्षण और उसके प्रयोग तथा गेयपद आदि उसके अंगों का निरूपण विस्तृत रूप में किया है।

, dfo'kk·/;k;% &

नाट्यशास्त्र के ईक्कीसवें अध्याय में नाट्याभिनय की कथावस्तु के प्रासंगिक भेदों का वर्णन, कार्य की प्रारम्भ, प्रयत्न आदि पाँच अवस्थाएँ, सन्धि, परित्याग, विधान, बीज, बिन्दु आदि पाँच अर्थ प्रकृति, मुख्य कथावस्तु के सहायक अनुबन्ध–पताका एवं उनके स्थान, मुख्य प्रतिमुख आदि पाँच सन्धियाँ एवं रूपकों में सन्धियों की स्थिति का बृहद रूप में वर्णन किया गया है। इसमें साम, भेद आदि अंग सन्धियों के वर्णन के साथ–साथ उनके विभिन्न प्रयोजन, विलास आदि प्रतिमुख सन्धि का विस्ताररूप एवं अन्त में सभी प्रकार की विद्या, शिल्प एवं कला आदि का नाट्य के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है।

}kfo'kk·/;k;% &

नाट्याभिनय में वृत्तियाँ अर्थात् चेष्टाएँ अभिनय तथा अनाभिनय इस सभी काव्यों की जननी होती है, इसलिए इस अध्याय में भारती वृत्ति, सात्वती वृत्ति आदि चार वृत्तियों की उत्पत्ति का विस्तारपूर्वक व्याख्यान करते हुए भगवान विष्णु द्वारा मधु कैटभ नामक असुरों का विभिन्न प्रकार के अंगहारों के माध्यम से संहार करते समय प्रयोग किये गये सभी शस्त्र का न्याय नाम से नामकरण का उल्लेख एवं भारती वृत्ति आदि का विस्तारपूर्वक भेद एवं विभेद के साथ उसमें उत्पन्न भिन्न–भिन्न प्रकार के रसों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है।

=;kfo'kk·/;k;% &

इस अध्याय को भी प्रमुख स्थान देते हुए इसमें आहार्य अभिनय का विस्तृत वर्णन किया गया है। अभिनय के चार भेदों में आहार्य का तीसरा स्थान है। इस आहार्य अभिनय का सम्बन्ध प्रसाधन, वेश–भूषा और साज–श्रृंगार से है। आचार्य भरत ने इसे नेपथ्य कर्म भी कहा है। नाट्यशास्त्र में आहार्य अभिनय के चार प्रकार बताये गये हैं–पुस्त, अलंकार, अंग रचना, सजीव आदि मुख्य रूप में उल्लेख किया गया है।

prqfo'kk·/;k;% &

इस अध्याय विशेष का आधार सामान्य अभिनय है। इस प्रसंग में पात्रों की उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकृति का वर्णन है। इसी क्रम में वाचिक अभिनय के आलाप, प्रलाप आदि विभेदों को बताया गया है। इसके साथ–साथ ही दर्शन आदि क्रियाओं के अभिनय की विधि का वर्णन किया

गया है। इसके अतिरिक्त नाट्याभिनय में प्रयोग होने वाले विभिन्न प्रकार के रसों को स्थायी भावों के प्रदर्शन के लिए उचित सम्बोधन का विवरण दिया गया है। इस अध्याय में अन्तःपुर में होने वाले समस्त, राजोपचार के विधान का भी बृहद रूप में उल्लेख किया गया है।

ipfo'kk·/;k;% &

जो मनुष्य समस्त कलाओं में पारंगत हो उसे वैशिक पुरुष कहा जाता है इसलिए इस अध्याय का आचार्य भरत मुनि ने वैशिकोपचार अध्याय के नाम से नामकरण किया है। वैशिकोपचार में उस पुरुष की आन्तरिक भावनाओं में विराजित गुण, मर्म, उनके कार्य, वैशिकपुरूष के साथ स्त्री मिलन एवं नारी की चार अवस्थाओं के साथ–साथ उनके गुण–दोष का उपसर्पण एवं उनके भाव तथा विराग आदि में प्रयोग होने वाले उपायों का प्रयोग आदि का विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है।

"kMfo'kk·/;k;% &

इस अध्याय का आधार चित्राभिनय है। इस अध्याय में सामान्य अभिनय के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट अभिनयों का विवरण प्रस्तुत किया गया है जिसमें आकाश, सायंकाल, रात्रि, अंधकार आदि का प्रदर्शन करने के लिए विभिन्न अभिनय विधियों का वर्णन दिया गया है। क्रमानुसार वृद्ध तथा बालकों के सम्भाषण की विधा, मंच पर पात्र की मृत्यु तथा अन्य अभिनयों को सम्पन्न कराने की विधि एवं उनके नियमों का उल्लेख किया गया है।

lIrfo'kk·v/;k;% &

इस अध्याय में नाट्याभिनय की सिद्धियाँ एवं उनके प्रकार का विवरण दिया गया है। प्रेक्षकों के द्वारा नाट्य प्रयोग के प्रदर्शन के समय होने वाले विभिन्न प्रकार के रस ग्रहण तथा उसमें प्रभाव का वर्णन, प्रेक्षागृह में किसी प्रकार का विघ्न न हो इस हेतु, दैवी–सिद्धि, मानुषि सिद्धि का वर्णन, देवकृत घात, शत्रुकृत घात आदि का विस्तृत स्वरूप, निर्णायक प्रेक्षकों के लक्षण एवं श्रेणियाँ, विषय तथा विभिन्न रसों के अनुसार नाट्य प्रदर्शन के लिए शुभ मुहूर्त आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

v"Vkfo'kfrrek·/;k;% &

आचार्य भरतकृत नाट्यशास्त्र के अट्ठाईसवें अध्याय से लेकर चौतीसवें अध्याय तक संगीत के मुख्य अंग गायन, वादन एवं संगीतशास्त्र का वर्णन किया गया है। ये अध्याय संगीत साधकों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। अट्ठाईसवें अध्याय के प्रारम्भ में वाद्य यन्त्र के चार प्रकार–तत्, अवनद्ध, घन तथा सुषिर वाद्यों का वर्णन, गंधर्व संगीत का स्वरूप, उत्पत्ति, उनके प्रकार, स्वरों के अधिष्ठान, स्वरों के पद, ताल, गद्य भाग, ग्राम का विवरण एवं जाति और उनके भेद आदि का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है।

, dkuf='kk·v/;k;% &

इस अध्याय में षड्जग्रामाश्रित जातियों के रस आदि का विधि पूर्वक विनियोग करने का प्रयास किया गया है। गान्धर्व की विविध जातियाँ, उनके स्वर, वर्ण अलंकार आदि का वर्णन किया है। इसके पश्चात् गान्धर्व से

सम्बन्धित चार प्रकार की धातुओं का वर्णन और साथ–साथ वीणा वाद्य के विभिन्न प्रकार, उनके प्रयोग एवं वाद्य मिलाने के नियम आदि पर प्रकाश डाला गया है।

f=a'kk·/;k;% &

यह अध्याय सुषिर वाद्य लक्षण के नाम से जाना जाता है। इसमें सुषिर अर्थात् फूँककर बजने वाले वाद्य यन्त्रों के लक्षण का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। विशेषतः सुषिर वाद्यों में भरतकालीन कुतव (वाद्य वृन्द) में वंशी/बाँसुरी का प्रमुख स्थान रहा है इसलिए मुख्यतः इस अध्याय में इस वाद्य की रचना, वादन प्रक्रिया, अंगुलियों के संचालन की विधि एवं इस वाद्य से उद्धृत स्वरों के विधान का स्पष्ट रूप से विस्तार किया गया है।

,df=a'kk·/;k;% &

नाट्यशास्त्र के एकत्तीसवें अध्याय को तालविधानाध्याय के नाम से जाना जाता है। इस अध्याय में ताल और लय के आपस में सम्बन्धों का वर्णन करते हुए, ताल की उत्पत्ति, वादन प्रक्रिया के विधान, गीतों के लक्षण अंगों का विवेचन के साथ–साथ ध्रुवा, ताल विधान, लास्य के लक्षण आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

}kf=a'kk·/;k;%

यह अध्याय ध्रुवाविधान अध्याय के नाम से जाना जाता है। इस में ध्रुवा के पाँच लक्षणों की चर्चा, ध्रुवा की जातियों का स्वरूप, 110 प्रकार की ध्रुवा–छन्दों के नाम, उनकी रचना के नियम आदि का उदाहरण दिया गया

है। इसके पश्चात् गान के पाँच प्रकार के विधि एवं अंत में ध्रुवा गान के साथ वाद्यों के वादन विधि का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है।

=;fL=a'kk·/;k;% &

नाट्यशास्त्र के तैंतीसवें अध्याय में लगभग तीन सौ श्लोक से अधिक श्लोक हैं, अतः इसे एक बड़ा अध्याय माना जाता है। इस अध्याय में अनेक अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति, विभागपूर्वक लक्षण, उनके कर्म तथा उसके साथ–साथ मृदंग, पणव एवं दर्दुर आदि वाद्यों की वादन विधि एवं उनके लक्षण को विस्तारपूर्वक बताया गया है। स्वाति तथा नारद के द्वारा अवनद्ध वाद्यों के प्रवर्तन, अष्टादश जातियों का विस्तृत वर्णन, वाद्यों के निर्माण, वादन शैली एवं वाद्यों के अधिदेवताओं का भी स्पष्ट रूप में वर्णन किया गया है।

prqfL=a'kk·/;k;%

इस अध्याय में स्त्री एवं पुरुषों की उत्तम, मध्यम, अधम आदि त्रयः प्रकृति का वर्णन किया गया है। तदनन्तर नाट्याभिनय के नायकों के विभिन्न प्रकार, अन्तःपुर में रहने वाली आभ्यान्तर प्रकृति महादेवी, देवी, स्वामिनी आदि स्त्रियों का उल्लेख, शेष स्त्री पात्रों के लक्षण, प्रजानन में प्रयुक्त पुरुषों का वर्णन आदि को विस्तार से स्पष्ट किया गया है।

iapf=a'kk·/;k;%

नाट्यशास्त्र का पैंतीसवाँ अध्याय भूमिका विकल्प पर आधारित है। इस में नाट्य प्रस्तुति के लिए मंच पर एवं नेपथ्य में अभिनय करने वाले नाट्यकर्मियों के विविध रूप में जैसे–बढ़ई, धोबी, नायक–नायिका, विदूषक,

नान्दी, रूप–सज्जाकार आदि का परिचय एवं नाट्यसिद्धान्तों का निरूपण किया गया है।

"kVf=a'kks·/;k;%

भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र का यह अन्तिम अध्याय है और इस अध्याय को नाट्यावतार अध्याय के नाम से जाना जाता है। इस अध्याय में एक कथा देखने को मिलती है। पृथ्वी पर नाट्य के अवतरित होने के विषय पर ऋषियों की जिज्ञासा के कारण भरत मुनि ने उत्तरस्वरूप दो आख्यानों का वर्णन किया है, जिसमें भरतपुत्रों के द्वारा मुनिजनों के उपहासकारी नाट्य से क्रुद्ध होकर भरत और उनके पुत्रों को शाप देना और राजन नहुष की शरण में आकर बस जाना इन दो कथाओं का वर्णन किया गया है। अन्त में ऋषि वाल्मीकि, विश्वामित्र, वशिष्ठ, अंगिरा, पुलस्त्य, गौतम, कश्यप, बृहस्पति, दुर्वासा आदि का भी नामोल्लेख है, जिन्होंने भरत द्वारा नाट्यशास्त्र का श्रवण किया था।

ukV~;'kkL= ds 0;k[;kdkj %&

आचार्य भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र सम्पूर्ण विश्व का संस्कृत भाषा में लिखा गया सबसे प्राचीन ग्रन्थ है, जिसकी संज्ञा पंचम वेद से की गई है। इसमें नाट्याभिनय, नृत्य, कला, संगीत, काव्य एवं धार्मिक सौन्दर्यशास्त्र सहित समस्त भारतीय कला की विविध स्वरूपों का अत्यन्त विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है।

इस ग्रन्थ को 36 अध्यायों में विभाजित किया गया है, जिसमें ललित कला का वर्णन करने वाले 6000 से अधिक पद हैं जो 2500 सौ साल से

भी अधिक पुराने हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि नाट्यशास्त्र का पहला अध्याय अर्द्धऐतिहासिक और अधिकतर पौराणिक कथाओं पर आधारित है। इस ग्रन्थ में संस्कृत भाषा जैसे माध्यमिक साहित्य को प्रेरित किया है। कालान्तर में नाट्यशास्त्र पर सबसे विश्वसनीय टिप्पणी रूप में दसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध संगीत मर्मज्ञ आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा रचित 'अभिनव भारती' नामक ग्रन्थ है।

आचार्य अभिनवगुप्त के पूर्व भी अनेक व्याख्याकार हुए हैं, जिसमें भट्टलोलट, शंकुक, भट्टनायक आदि व्याख्याकार का विस्तृत रूप में उल्लेख आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ ''काव्य प्रकाश'' में किया है। इसका प्रमाण शारंगदेव द्वारा रचित संगीतरत्नाकर में देखने को मिलता है।

0;k[;kdkjk Hkkjrh;s ykYVknHkVV'kd|dk%A

HkVVkfHkuoxIrÜp JheRdhfrI /kjk·ij%AA[1]

इस प्रकार प्रतीत होता है कि लोलट, उद्भट्ट, शंकुक, अभिनवगुप्त तथा कीर्तिधर ने इस पर व्याख्याएँ लिखी होंगी। आचार्य अभिनवगुप्त ने अभिनव भारती में लोलट, उद्भट्ट, शंकुक तथा कीर्तिधर के साथ–साथ भट्टनायक, भट्टयन्त्र, भाष्यकार नान्यदेव तथा हर्ष नामक वार्तिककार का भी उल्लेख किया है। इसमें यह ज्ञात होता है कि नाट्यशास्त्र पर अनेक व्याख्याकारों ने व्याख्याएँ लिखी हैं। निम्नलिखित उक्त संभावित व्याख्याकारों का संक्षिप्त में परिचय देने की कोशिश की गई है, जो कि इस प्रकार है –

---

1 नाट्यशास्त्र का सामान्य परिचय, डॉ0 पारसनाथ द्विवेदी, पृ0सं0 27

1- mnHkÍ %&

ये सम्भवतः नाट्यशास्त्र के प्राचीनतम टीकाकार थे। नाट्यशास्त्र के व्याख्याकारों एवं टीकाकारों के क्रम में उद्भट का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कश्मीर निवासी, ज्यादित्य के सभापण्डित उद्भट्ट के नाट्यशास्त्र सम्बन्धी व्याख्या का वर्णन शारंगदेव द्वारा संगीतरत्नाकर में भी उल्लेख किया गया है। उद्भट्ट के मतों की महत्ता को सिद्ध करते हुए मम्मट ने इन्हें आचार्य भरत के रससूत्र का व्याख्याकार माना है। नाट्यशास्त्र के छठवें अध्याय में इनके मतों का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। उद्भट्ट ने आचार्य भरत द्वारा बतायी गयी 4 वृत्तियों का खंडन किया है तथा 3 वृत्तियों को स्वीकार करते हुए उन्हें निम्न नाम दिया है– 1. न्याय चेष्टा, 2. अन्याय चेष्टा तथा 3. फलसंविति चेष्टा।

अभिनवगुप्त कृत अभिनव भारती में नाट्यशास्त्र के छठवें, नौवें, उन्नीसवें तथा ईक्कीसवें अध्याय में उद्भट्ट के विचारों का विस्तृत उल्लेख दिया है। इस व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि उद्भट्ट नाट्यशास्त्र के प्राचीनतम् व्याख्याकार रहे हैं किन्तु उनकी व्याख्या अथवा टीका उपलब्ध नहीं है।[2]

2- 'kdyhxHk rFkk ?k.Vd %&

नाट्यशास्त्र के व्याख्याकारों के क्रम में शकलीगर्भ तथा घण्टक का नाम भी विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है। अभिनवगुप्त द्वारा रचित अभिनवभारती में इन व्याख्याकारों के टीकाओं का उल्लेख किया गया है।

[2] विश्वेश्वर, हिन्दी अभिनव भारती, भूमिका, पृ0सं0 12

विभिन्न विवरणों से यह ज्ञात होता है कि उद्भट्ट ने तीन वृत्तियों को स्वीकृत किया था जबकि शकलीगर्भ के अनुसार वृत्तियों की संख्या पाँच बतायी गयी है। अतः स्पष्ट है कि इन दोनों व्याख्याकारों के मतों में पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है। भट्टलोल्लट के द्वारा शकलीगर्भ के मत का खण्डन किया गया है। अभिनवगुप्त के अभिनवभारती में यह भी वर्णित है कि घण्टक ने नाट्यशास्त्र के नायिका भेद प्रकरण पर व्याख्या लिखी है।

3- HkVVyksYyV %&

अभिनवगुप्त के अभिनव भारती में छठे, बारहवें, तेरहवें, अट्ठारहवें तथा उन्नीसवें अध्यायों में विस्तृत उल्लेख देखने को मिलता है। निःसन्देह भट्टलोल्लट नाट्यशास्त्र ग्रन्थ के प्रसिद्ध तथा प्रचलित व्याख्याकार थे। इनकी व्याख्याओं की प्रासंगिकता को दर्शाते हुए आचार्य मम्मट ने इन्हें आचार्य भरत के रससूत्र का व्याख्याता माना है। इनकी व्याख्याओं से ज्ञात होता है कि इनके मत में उद्भट्ट के मत से मेल नहीं खाते तथा यह भी पाया गया है कि इन्होंने उद्भट्ट के मतों की आलोचना की है। अतः स्पष्ट है कि नाट्यशास्त्र ग्रन्थ के टीकाकारों के क्रम में भट्टलोल्लट का नाम उद्भट्ट के बाद आता है।

भट्टलोल्लट के अनुसार रस अनेक हैं अतः इन्हें आठ या नौ संख्याओं में नहीं बांधा जा सकता। अभिनव भारती में ध्रुव ताल के सम्बन्ध में भी भट्टलोल्लट के मतों का उल्लेख प्राप्त होता है जो इस बात की पुष्टि करता है कि भट्टलोल्लट ने नाट्यशास्त्र के कुछ अध्यायों की व्याख्या लिखी है।

4- Jh 'kdqd %&

'भुवनाभ्युदय' काव्य के कर्ता श्री शंकुक एक काश्मिरी कवि थे। इन्होंने रस की अनुमितिपरक व्याख्या की है। श्री शंकुक द्वारा भट्टोल्लट के रस सम्बन्धी सिद्धान्तों की आलोचना की गई है। अभिनय भारती के छठें अध्याय में रससूत्र में व्याख्याकार के रूप में शंकुक का उल्लेख देखने को मिलता है।

अभिनवगुप्त के मतानुसार अभिनय के अनेक भेद हो सकते हैं जिसका उल्लेख उन्होंने अभिनव भारती के चौबीसवें अध्याय में किया है। इस प्रसंग का खण्डन करते शंकुक ने अभिनय के चालीस हजार भेदों को स्वीकृत किया है। शंकुक का समय नौवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। इनके समय तथा व्याख्याओं का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि इन्होंने नाट्यशास्त्र के तीसरे अध्याय से लेकर उन्तीसवें अध्याय तक व्याख्या लिखी है। कुछ विद्वानों का ये भी मानना है कि इन्होंने सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र पर व्याख्या लिखी है।[3]

5- HkVVuk;d %&

'हृदयदर्पण' नामक ग्रन्थ के रचयिता भट्टनायक माने गये हैं जिन्होंने ध्वनि सिद्धान्त के खण्डन के उद्देश्य से इस स्वतंत्र ग्रन्थ की रचना की। भट्टनायक को टीकाकरण के रूप में नहीं, बल्कि हृदय दर्पण के स्वतंत्र

3 नाट्यशास्त्र का सामान्य परिचय, डॉ0 पारसनाथ द्विवेदी, पृ0सं0 29

लेखक के रूप में स्मरण किया है। अभिनवगुप्त और कल्हण दोनों ने इनको नाट्यशास्त्र के टीकाकार होने की बात लिखी है।

भट्टनायक के मतानुसार इस का भोग ही काव्य का जीवन है। इन्होंने काव्य के तीन व्यापार माने हैं :– अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व।

''अभिधा'' के द्वारा भावार्थ की प्रतीत होती है और भावकत्व व्यापार के द्वारा विभाव आदि का साधारणीकरण होता है, रसानुभूति की प्रक्रिया में ''साधारणीकरण'' व्यापार इनकी ही उद्भावना है। इस प्रकार भट्टनायक ने साधारणीकरण के मौलिक सिद्धान्त बताये हैं। अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के साधारणीकरण सिद्धान्त को तो स्वीकार किया है किन्तु उनके भोजकत्व व्यापार की प्रक्रिया को स्वीकार नहीं किया है।

अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में सहृदयदर्पण से निम्न श्लोक उद्धृत किया है –

^^ueLr=kD;fuek.kdo;s 'kEHkos ;r%A
ifr{k.k uxUukV; i;kxjfl dk tu%AA**

म0म0 काणे के अनुसार नाट्यशास्त्र की व्याख्या नहीं है। अपितु वह भट्टनायक की स्वतंत्र रचना है। उनके अनुसार भट्टनायक का समय लगभग 35–985 के मध्य में माना गया है।''[4]

---

4 नाट्यशास्त्र–डॉ0 पारसनाथ द्विवेदी, पृ0सं0 57

6- HkVV;U= %&

भट्टयन्त्र को भी नाट्यशास्त्र व्याख्याकार के रूप में माना गया है। अभिनवगुप्त ने अपने ग्रन्थ अभिनवभारती में भट्टयन्त्र का उल्लेख किया है। यह माना गया है कि भट्टयन्त्र ने भी नाट्यशास्त्र पर कोई व्याख्या या टीका लिखी होगी।

7- fo'okol| vkj vt|u Hkjr %&

विश्वावसु संगीत के प्रमुख आचार्यों में से एक माने जाते हैं। ये वीणावादन में भी निपुण थे। इनकी वीणा का नाम ''बृहती'' था और अपनी इसी वीणा पर यह गान्धर्व–गान किया करते थे। मतङ्ग ने अपने ग्रन्थ बृहद्देशी में विश्वावसु को आचार्य रूप में उल्लिखित प्राप्त होता है।

विश्वावसु के शिष्यों में एक प्रमुख शिष्य अर्जुन थे। तमिलभाषा में प्राप्त 'पञ्चभरतम्' नामक ग्रन्थ में अर्जुनभरत का उल्लेख प्राप्त होता है।

8- dkR;k;u vkj vt|u %&

अभिनवगुप्त के कात्यायन मत के उल्लेख से यह पता चलता है कि कात्यायन ने भी नाट्यशास्त्र तथा छन्दःशास्त्र पर कोई ग्रन्थ अवश्य लिखा होगा। सागरनन्दी के द्वारा भी कात्यायन के मत का वर्णन किया गया है, जिससे ज्ञात होता है कि कात्यायन भी नाट्यशास्त्र के आचार्य थे।

अभिनवगुप्त ने अभिनव भारती में एक आचार्य के रूप में राहुल का भी उल्लेख किया है। राहुल द्वारा ''भरतवार्तिक'' नामक नाट्यशास्त्र की

व्याख्या की गयी। अतः ऐसा माना जाता है कि राहुल भी नाट्य एवं संगीत के आचार्य रहे हैं।

9- ofrlddkj g"k %&

''प्राप्त प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि अभिनवगुप्त के कई वर्ष पूर्व ही हर्ष ने नाट्यशास्त्र पर वार्तिक लिखा था। इसी कारण वे वार्तिककार के रूप में प्रसिद्ध हैं। अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में नाट्यमण्डप के प्रसंग में, नाट्य और नृत्त के भेद निरूपण में तथा पूर्वरंग के निरूपण के प्रसंग में भी वार्तिककार हर्ष का मत उद्धृत किया है। इससे पता चलता है कि हर्ष ने नाट्यशास्त्र के लगभग सभी अध्यायों पर वार्तिक लिखा था। प्रो0 रामकृष्ण कवि ने नाट्यशास्त्र के द्वितीय भाग की भूमिका में बताया है कि अंगहारों पर वार्तिक के खण्डित अंश पाये गये हैं। किन्तु डॉ0 राधवन का कथन है कि वार्तिककार हर्ष ने नाट्यशास्त्र पर वार्तिक नहीं लिखा है, क्योंकि अभिनवभारती में छठवें अध्याय के बाद वार्तिक का कोई अंश उपलब्ध नहीं है। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि नाट्यशास्त्र के अन्य अध्यायों पर वार्तिक नहीं लिखा गया। शारदातनय ने त्रोटक के प्रसंग में हर्ष के मत का उल्लेख किया है। सागरनन्दी ने नाटकलक्षणरत्नकोष में वार्तिककार हर्ष का नाट्याचार्य के रूप में उल्लेख किया है।''[5]

10- ekr`xIr %&

मातृगुप्त एक प्रसिद्ध नाट्य आचार्यों मे से एक थे और साथ ही एक कुशल कवि के रूप में भी प्रतिष्ठित थे। विभिन्न विवरणों से ज्ञात होता है

---

[5] नाट्यशास्त्र—डॉ0 पारसनाथ द्विवेदी, पृ0सं0 58—59

कि मातृगुप्त भर्तृमेण्ठ के समकालीन कवि थे। प्रसिद्ध इतिहासकारों द्वारा उल्लिखित तथ्यों से ज्ञात होता है कि इन्होंने कश्मीर पर शासन भी किया जिसकी अवधि पाँच वर्ष बतायी गयी है। अभिनवगुप्त द्वारा रचित अभिनव भारती में कई प्रसंगों में मातृगुप्त के मतों उल्लेख किया गया है।

शारदातनय ने भाव प्रकाशन में नाटक की कथावस्तु में उत्पाद का महत्व बताते हुए मातृगुप्त के मतों का विवरण प्रस्तुत किया है। कुन्तक द्वारा मातृगुप्त के काव्य की सुकुमारता का एवं उसमें पाये जाने वाली विचित्रता का विशेष उल्लेख किया है।

निम्न साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मातृगुप्त ने आचार्य भरत के मतों की समीक्षा करते हुए नाट्यशास्त्र पर कोई ग्रन्थ अथवा टीका अवश्य लिखी होगी।

11- dhfr/kj %&

कीर्तिधर नाट्य एवं संगीत के एक प्रतिष्ठित आचार्य के रूप में जाने जाते हैं। इन्होंने आचार्य भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र नामक ग्रन्थ के अध्याय विशेषों की विस्तृत व्याख्या दी है जिसके कारण इनका स्मरण नाट्यशास्त्र के व्याख्याता के रूप में किया जाता है। अभिनवगुप्त ने भी इस मत को स्वीकार करते हुए इस तथ्य की पुष्टि की है कि कीर्तिधर ने नाट्यशास्त्र ग्रन्थ की समीक्षा करते हुए व्याख्याता प्रस्तुत की है। अभिनवगुप्त का कथन है कि उन्होंने स्वयं नन्दिकेश्वर के ग्रन्थ को नहीं देखा किन्तु कीर्तिधर ने नन्दिकेश्वर के मतानुसार 'चित्रपूर्वरंगविधि' का निरूपण किया है।

12- ukU;no %&

नान्यदेव को भरतभाष्य का लेखक माना गया है। अभिनवगुप्त ने 'अभिनवभारती' में भरतभाष्य से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इनका समय 1086–1147 के मध्य माना गया है। भरतभाष्य में उल्लेखित चार अभिनयों में से विशेष रूप से वाचिक अभिनय की चर्चा की गई है। नान्यदेव ने नाट्यशास्त्र के 28–33 अध्याय पर व्याख्या लिखी है, जिसमें संगीत की चर्चा की गई है। शारंगदेव द्वारा संगीतरत्नाकर में भी भरतभाष्य का उल्लेख किया गया है।

13- HkV~Vrkr %&

भट्टतौत अभिनवगुप्त के गुरु और नाट्यशास्त्र के व्याख्याता माने गये हैं। भट्टतौत द्वारा ''काव्यकौतिक'' नामक एक स्वतंत्र ग्रन्थ की रचना की गई थी। अभिनवगुप्त ने भी काव्यकौतुक पर ''विवरण'' नामक टीका की रचना की। अभिनवभारती में काव्यकौतुक से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। अभिनव द्वारा अनेक स्थानों पर अपने गुरु भट्टतौत के विचारों को 'उपाध्यायः', 'गुरुवः' कह कर उद्धृत किया है। उनके विचार से रससमुदाय ही नाट्य है। भट्टतौत के अनुसार रस केवल नाट्य में नहीं बल्कि काव्य में भी पाया जाता है। भट्टतौत के विचारों का प्रभाव केवल अभिनवगुप्त पर ही नहीं अपितु अन्य आचार्यों पर भी पड़ा है। इनका समय दशवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है।

14- vfHkuoxqIr %&

नाट्यशास्त्र ने व्याख्याकारों में अभिनवगुप्त का नाम बड़े ही आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। इनको दर्शनशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र तथा संगीतशास्त्र का प्रामाणिक आचार्य माना गया है। ये प्रतिभाशाली विद्वान् एवं शिव के परम भक्त थे।

इनके पूर्वज गंगा–यमुना के मध्य के प्रदेश के रहने वाले थे। वे कश्मीर नरेश ललितादित्य के आमंत्रण पर कश्मीर में आकर बस गये। इनके पितामह का नाम वराहगुप्त और पिता का नाम चुखुल था। वास्तव में अभिनवगुप्त के पिता का नाम नृसिंहगुप्त था, किन्तु वे ''चुखल'' के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे।

अभिनवगुप्त का समय दशवीं शताब्दी का अन्तिम भाग तथा ग्यारहवीं शताब्दी का प्रारम्भ माना गया है। आनन्दवर्द्धन ने ध्वनि सिद्धान्त को लोकप्रिय बनाने एवं अलंकार शास्त्र का सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त बनाने का श्रेय इन्हें ही दिया है।

उपर्युक्त विवरणों से यह ज्ञात होता है कि आचार्यभरत मुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र नामक ग्रन्थ पर व्याख्या देने वाले कुछ प्रमुख विद्वान् स्मरण किये जाते हैं, जिनमें अभिनवगुप्त के अभिनवभारती का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है क्योंकि वर्तमान समय में 'अभिनवभारती' टीका ही एक मात्र ग्रन्थ उपलब्ध है, शेष केवल विद्वानो का ही नाम उल्लेख प्राप्त होता है। इनकी लिखी गई 'परात्रिंशिकाविवरण' तथा ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिमर्शिणी भी प्राप्त है।